





विषय	हिंदी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	P2: मध्यकालीन कविता - 1
इकाई सं. एवं शीर्षक	M06: रासो साहित्य : प्रामाणिकता का प्रश्न
इकाई टैग	HND_P2_M06

निर्माता समूह	
प्रधान निरीक्षक	प्रो. गिरीश्वर मिश्र
	कुलपति, महातमा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001
	ईमेल : <u>misragirishwar@gmail.com</u>
प्रश्नपत्र-संयोजक	प्रो. कृष्ण कुमार सिंह
	अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ
	महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001
	ईमेल : kks5260@gmail.com
इकाई-लेखक	डॉ. बीर पाल सिंह यादव
	सहायक प्रोफेसर, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ
	महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001
	ईमेल : <u>bpsjnu@gmail.com</u>
इकाई समीक्षक	प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित
	प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र)
	ईमेल : <u>suryadixit123@gmail.com</u>
भाषा सम्पादक	प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
	प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001
	ईमेल : <u>anandsharma 64@yahoo.co.in</u>

पाठ का प्रारूप

- 1. पाठ का उद्देश्य
- 2. प्रस्तावना
- 3. रासो शब्द का अर्थ
- 4. रासो काव्य के प्रकार
- 5. रासो ग्रंथों की प्रामाणिकता
- 6. पृथ्वीराज रासो के विभिन्न संस्करण
- 7. पृथ्वीराज रासो की अप्रामाणिकता के संबंध में विद्वानों के मत
- 8. पृथ्वीराज रासो की अप्रामाणिकता के कारण
- 9. पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक मानने वालों के मत
- 10. निष्कर्ष

HND : हिंदी P2: मध्यकालीन कविता - 1

M06: रासो साहित्य : प्रामाणिकता का प्रश्न







1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के द्वारा आप-

- रासो काव्य का अर्थ जान सकेंगे।
- आदिकालीन रासो ग्रंथों की ऐतिहासिकता से परिचित होंगे।
- रासो ग्रंथों की अप्रामाणिकता को पहचान सकेंगे।
- 'पृथ्वीराज रासो' के विभिन्न संस्करणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- 'पृथ्वीराज रासो' के बारे में विभिन्न विद्वानों के मतों से परिचित होंगे।

2. प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का आदिकाल सबसे अधिक विवादों का काल है। इस अविध में रचित वीर रस प्रधान रासो काव्य ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन ग्रंथों की प्रामाणिकता को लेकर काफी उहापोह रहा है। इन वीरगाथात्मक कृतियों की रचना चारण किवयों ने की है। आदिकाल में रचनाओं की प्रामाणिकता का निर्णय एक बड़ी समस्या है। स्वयं आचार्य शुक्ल ने जिन रचनाओं को आधार मानकर वीरगाथा काल की नींव रखी वे स्वयं अप्रामाणिक साबित हो चुकी हैं। उन्होंने जिन बारह पुस्तकों के आधार पर वीरगाथा काल कहा है उनमें 'विजयपाल रासो', 'हम्मीर रासो', 'कीर्तिलता', 'कीर्तिपताका', 'खुमान रासो', 'बीसलदेव रासो', 'पृथ्वीराज रासो', 'जयचंद्र प्रकाश', 'जयमयंक जसचिन्द्रका', 'परमाल रासो' तथा विद्यापित की 'पदावली' शामिल हैं। इनमें प्रथम चार हिंदी की नहीं अपितु अपभ्रंश की रचनाएं हैं। 'खुमान रासो' का रचनाकाल 1760 के बाद सिद्ध हो चुका है। 'बीसलदेव रासो' और 'पृथ्वीराज रासो' का रचनाकाल विवाद का विषय तो है ही ये प्रामाणिक भी नहीं हैं। इनकी प्रामाणिकता संदेह के घेरे में है। 'जय चंद्र प्रकाश' एवं 'जयमयंक जस चिन्द्रका' का अस्तित्व ही नहीं है। उनका सिर्फ नाम आचार्य शुक्ल ने कहीं पढ़ा था। अतः ये अनुपलब्ध हैं। 'परमाल रासो' एवं खुसरो की पहेलियाँ भाषा एवं रचनाकाल की दृष्ट से अप्रामाणिक एवं परवर्ती सिद्ध होती हैं। अंत में सिर्फ एक ही रचना प्रामाणिक बचती है विद्यापित की 'पदावली'। इसका रचनाकाल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने वि.सं. 1460 माना है। अत: यह भक्तिकाल की रचना सिद्ध होती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्वीकार किया है कि आदिकाल में जितनी भी प्रामाणिक रचनाएं उपलब्ध हैं वे अपभ्रंश की हैं। लोकभाषा या हिंदी की रचनाएं संदिग्ध हैं।

3. रासो शब्द का अर्थ

गार्सा द तासी ने रासो शब्द को 'राजसूय' शब्द से उत्पन्न बताया है। उनका मत था कि वीरगाथा काव्यों में राजसूय यज्ञों का हवाला मिलता है पर कुछ रचनाएं वीर काव्य न होकर प्रेम काव्य हैं। नरोत्तम स्वामी ने 'रासो' को राजस्थानी भाषा के 'रिसक' शब्द से उद्भूत माना जिसका मतलब कथा काव्य से है किंतु चारण काव्यों को छोड़कर जैन काव्य पर यह विचार ठीक नहीं बैठता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'रसायण' शब्द से रासो शब्द की उत्पत्ति मानी है। इसके लिए उन्होंने 'बीसलदेव रासो' की एक पंक्ति का सहारा लिया है-

'बारह सौ बहोत्तरां मझारि, जेठ बदी नवमी बुधवार नाल्ह रसायण आरंभई शारदा तूठी ब्रहम कुमारि॥'

HND : हिंदी P2: मध्यकालीन कविता - 1







आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रासो की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'रासक' शब्द से मानी है। 'रासक' एक छन्द भेद और काव्य भेद भी है। चारण कवियों ने 'रासक' शब्द का प्रयोग चरित काव्य के लिए किया है।

गणपित चन्द्र गुप्त ने लिखा है कि "वस्तुतः रास या रासो परंपरा को साहित्य में प्रचलित करने का श्रेय जैन किवयों को है। यह दूसरी बात है कि आगे चलकर जब यह परंपरा जैन मंदिरों से निकलकर राजदरबारों में पहुँची तो इनकी विषयवस्तु एवं शैली में अंतर आ गया। वहाँ पौराणिक गाथाओं के स्थान पर ऐतिहासिक चिरत्र एवं शांत रस के स्थान पर वीर रस का वर्ण्य हो गया। शैली में भी चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति आ गई। अस्तु हमारे विचार में परवर्ती युग से रासो काव्य इसी परम्परा के विकसित रूप के सूचक हैं।"

अपभ्रंश में 'रासक' 29 मात्राओं का एक छन्द भी है, जिसे रास या रासा कहा जाता था। रासक छन्द की प्रधानता वाले ग्रंथ को रास कहा जाता था। कालान्तर में जिस काव्य में गेय छंद का प्रयोग हो उसे रास कहा जाने लगा। शुरुआत में 'रास' छन्द का प्रयोग प्रेमपरक रचनाओं में होता था। फिर धीरे-धीरे वीर रस युक्त रचनाएं भी इसी छंद में लिखी जाने लगीं। अत: रासो की व्युत्पत्ति का समीकरण इस प्रकार है:

रासक > रासअ > रासा > रासो

4. रासो काव्य के प्रकार

डॉ. गणपित चंद्र गुप्त ने गंभीर अध्ययन के बाद रासो काव्यों को निम्नांकित दो भागों में बाँटा है जो समीचीन लगता है:

धार्मिक रास काव्य : इसके अंतर्गत जैन कवियों द्वारा रचित जैन धर्म से संबंधित व्यक्तियों को चरित नायक बनाया गया है। इन कृतियों का उद्देश्य धर्मतत्व का निरूपण रहा है। इन काव्यों की सामग्री जैन पुराणों से ली गई है। गणपति चन्द्र गुप्त 'भरतेश्वर बाह्बली रास' को हिंदी का प्रथम रास काव्य मानते हैं।

ऐतिहासिक रासो काव्य : इस श्रेणी में चारण किवयों द्वारा रिचत ग्रंथ आते हैं। ऐतिहासिक रासो काव्यों के किव राजाश्रित थे। अत: उनकी किवता का उद्देश्य अपने नरेशों की यशकीर्ति को फैलाना था। इनमें ऐतिहासिक व्यक्तियों का उल्लेख तो मिलता है परंतु ऐतिहासिकता का ठीक से पालन नहीं किया गया है। इनकी संख्या सात है- 1. बीसलदेव रासो - नरपित नाल्ह; 2. पृथ्वीराज रासो - चन्दबरदाई; 3. परमाल रासो - जगनिक; 4. बुद्धि रासो - जल्हण; 6. विजयपाल रासो - मल्लिसिंह; 7. खुमान रासो - दलपितिविजय।

5. रासो ग्रंथों की प्रामाणिकता

रासो साहित्य के चिरत्र नायक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं परंतु इन काव्य ग्रंथों में ऐतिहासिकता की रक्षा नहीं की गई है। इन ग्रंथों में ऐतिहासिक तथ्य कम कल्पना अधिक मिलती है। इसलिए ढेर सारी ऐतिहासिक भ्रांतियाँ पैदा हो गई हैं। इन ग्रंथों में प्रयुक्त विवरण इतिहास से मेल नहीं खाता है। जिन घटनाओं, तिथियों, नामावलियों का विवरण रासो काव्य में उपलब्ध है वे इतिहाससम्मत नहीं हैं।

HND : हिंदी P2: मध्यकालीन कविता - 1







उल्लेखनीय है कि आचार्य शुक्ल ने जिन 12 ग्रंथों के आधार पर वीरगाथाकाल की नींव रखी, उनमें 6 ग्रंथ रासो काव्य के अंतर्गत आते हैं। उनकी प्रामाणिकता के संबंध में विचार करने पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल पाते हैं-

- बीसलदेव रास : बीसलदेव रास के रचयिता नरपित नाल्ह थे। लेकिन अभी भी इसके रचनाकार के बारे में विवाद है। इस ग्रंथ की रचना सं. 1212 विक्रमी में की गई थी। कुछ विद्वान इसे 13वीं शताब्दी की कृति मानते हैं और कुछ 16वीं शताब्दी की मानते हैं। इस ग्रंथ के चिरतनायक विग्रहराज चतुर्थ एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, किंतु अन्य रासो काव्यों की भांति इसमें भी अनेक ऐतिहासिक भ्रांतियाँ हैं। यह प्रमाणित करता है कि इस ग्रंथ में तथ्य कम और कल्पना अधिक है।
- पृथ्वीराज रासो : 'पृथ्वीराज रासो' ऐतिहासिक चरित काव्य होने पर भी ऐतिहासिक तथ्यों से रिहत है। इसमें किव ने कल्पना एवं अतिशयोक्ति का प्रयोग अधिक किया है परिणामतः इतिहास की रक्षा नहीं हो सकी है। यद्यपि रासो की प्रामाणिकता संदिग्ध है तथापि उसमें काव्य सौंदर्य निश्चय ही अद्भुत है। वीर एवं श्रृंगार की जैसी उदात्त योजना इस महाकाव्य में की गई है वैसी बहुत कम ग्रंथों में दिखाई पड़ती है। ऐतिहासिक, पौराणिक घटनाओं, अदभुत भाव योजनाओं, प्रकृति निरूपण, अलंकारों के सहज प्रयोगों और छंदों की विविधता के कारण रासो काव्यों में इसको उच्चकोटि का दर्जा प्राप्त है।

चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता को लेकर विद्वानों में सबसे अधिक मतभेद हैं। सबसे बड़े विवाद का कारण इसके विभिन्न संस्करणों की उपलब्धता है। इसे प्रामाणिक सिद्ध करने वाले विद्वानों के तीन मत हैं। एक समूह इसको प्रामाणिक मानता है। दूसरा अप्रामाणिक मानता है। तीसरा समूह अर्द्धप्रामाणिक मानता है। माता प्रसाद गुप्त ने इसके लघुतम पाठ को 'पृथ्वीरास रासो' का मूल रूप बताया है। आचार्य शुक्ल के अनुसार- "इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं कि यह पूरा ग्रंथ जाली है।"

- परमाल रासो : आचार्य शुक्ल के मतानुसार "जगिनक के काव्य का आज कहीं पता नहीं है पर उसके आधार पर प्रचिलत गीत, हिंदी भाषा-भाषी प्रांतों के गाँव-गाँव में सुनाई पड़ते हैं।... यह गूँज मात्र है मूल शब्द नहीं।" आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इस ग्रंथ को अर्द्ध प्रामाणिक स्वीकार करते हुए कहा है- "जगिनक के मूल काव्य का रूप क्या था? यह कहना किठन हो गया है। अनुमानतः इस संग्रह का वीरत्वपूर्ण स्वर तो सुरक्षित है लेकिन भाषा और कथानकों में बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है। इसिलए चंदबरदाई के पृथ्वीराज रासो की तरह इस ग्रंथ को भी अर्द्ध प्रामाणिक कह सकते हैं।" 'आल्ह खण्ड' नाम से चार्ल्स इलियट ने सर्वप्रथम इसका प्रकाशन कराया था जिसके आधार पर श्याम सुंदरदास ने 'परमाल रासो' का पाठ निर्धारण कर उसे नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित कराया।
- खुमान रासो : 'खुमान रासो' का रचयिता दलपित विजय नामक कि है। इस ग्रंथ का चिरत नायक मेवाइ का राजा खुमान द्वितीय है। इसकी एक अपूर्ण प्रित प्राप्त हुई है उसमें खुमान से लेकर महाराणा प्रताप सिंह तक का वर्णन मिलता है। इसे 9वीं शती की रचना माना जाता है लेकिन जो प्रित प्राप्त हुई है वह तो 17वीं शती की मालूम पड़ती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसे 9वीं शती की रचना मानते हैं तो राजस्थान के वृत्त संग्राहकों (डॉ. मोतीलाल मनेरिया आदि) ने इसे 17वीं शती की रचना बताया है। इसमें आदिकालीन हिंदी का स्वरूप सुरक्षित है। इस ग्रंथ की रचना लगभग 5000 छंदों में की गई थी।

HND : हिंदी P2: मध्यकालीन कविता - 1







- विजयपाल रासो : इसके रचियता नल्हिसेंह भाट थे। इस काव्य में राजा बंग और विजयपाल के बीच युद्ध का वर्णन है। मिश्र बंधुओं ने इस कृति का रचनाकाल 14वीं शती माना है। यह रचना अपभ्रंश भाषा में रचित है। भाषा शैली के आधार पर यह रचना परवर्ती मालूम पड़ती है। अतः इसे हिंदी रासो काव्य परंपरा में स्थान देना उचित नहीं है। यह रचना प्रामाणिक रूप में उपलब्ध नहीं है।
- हम्मीर रासो : यह कृति शार्गंधर की बताई जाती है। परंतु इस ग्रंथ की सूचना मात्र ही उपलब्ध है। 'प्राकृत पैंगलम' में कुछ छंदों के आधार पर शुक्ल ने इसकी उपस्थिति को दर्ज किया है। इसकी कोई भी प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं है।

6. पृथ्वीराज रासो के विभिन्न संस्करण

'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता को लेकर विद्वानों में सबसे अधिक विवाद इसके संस्करणों की उपलब्धता के कारण पैदा हुए हैं। इसके मुख्य रूप से चार संस्करण प्राप्त हुए हैं। इन उपलब्ध संस्करणों में से किसको प्रामाणिक माना जाए, जिसके आधार पर मूल पाठ निश्चित हो सके।

- 1. वृहद संस्करण
- 2. मध्यम संस्करण
- 3. लघ् संस्करण
- 4. लघुतम संस्करण

वृहद संस्करण : इसकी प्रतियाँ उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित हैं जिसके आधार पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'पृथ्वीराज रासो' का प्रकाशन किया गया है। इसकी सभी प्रतियाँ 1750 के बाद की हैं। हालाँकि नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करण का आधार सं. 1642 की प्रति को माना जाता है। इसमें 69 समय (सर्ग) हैं तथा 16306 छंद हैं।

मध्यम संस्करण : यह अबोहर के साहित्य सदन, बीकानेर के जैन ज्ञानभण्डार तथा अगरचंद नाहटा के पास सुरक्षित है। मथुरा प्रसाद दीक्षित ने इसी संस्करण को प्रामाणिक माना है। इसकी छंद संख्या 17000 है। इसकी प्रतियाँ 1700 के बाद की हैं।

लघु संस्करण : इसकी प्रतियाँ बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में हैं। यह 19 सर्गों में है। इसमें 3500 श्लोक हैं। इसको किसी चन्द सिंह नामक व्यक्ति ने संकलित किया है।

लघुतम संस्करण : यह अगरचंद नाहटा द्वारा खोजा गया था। इसमें अध्यायों का विवरण नहीं है। इसमें 1300 श्लोक हैं। दशरथ शर्मा आदि ने इसी को प्रामाणिक माना है।

इन चारों संस्करणों की प्राप्त प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन से जो तथ्य सभी में मिलते हैं वे इस प्रकार हैं-(1) आदि पर्व (2) दिल्ली किल्ली कथा, (3) अनंगपाल दिल्ली दान, (4) पंग यज्ञ विधान, (5) संयोगिता नेम आचरण, (6) कैमास वध, (7) षटऋतु वर्णन, (8) कनवज कथा, (9) बड़ी लड़ाई, (10) बानवेध

HND : हिंदी P2: मध्यकालीन कविता - 1







कथा प्रसंगों की दृष्टि से लघु और लघुतम रूपान्तर में बड़ी समानता है। इन संस्करणों में प्राय: वर्णन विस्तार संबंधी अन्तर है।

7. पृथ्वीराज रासो की अप्रामाणिकता के संबंध में विद्वानों के मत

यह ग्रन्थ राजस्थान के तत्कालीन इतिहास की प्रामाणिक सामग्री का आधार माना जाता था किंतु यह आधार डॉ. वूलर की खोज से समाप्त हो गया। इसके पहले कर्नल टाड ने इसको ऐतिहासिक ऊँचाई प्रदान की थी। डॉ. वूलर को कश्मीरी पंडित जयानक रचित 'पृथ्वीराज विजय' मिला जिसमें पृथ्वीराज के जीवन से संबंधित घटनाएं तत्कालीन शिलालेखों से भी मेल खाती थीं। इस ग्रंथ के आधार पर डॉ. वूलर ने इसको अनैतिहासिक ही घोषित नहीं किया वरन बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (प्रकाशन सन 1883 इ.) द्वारा इसके प्रकाशन को भी बंद करवा दिया। इसके बाद श्री मुन्शी देवी प्रसाद ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका के अपने एक लेख में रासो को ऐतिहासिक दृष्टि से जाली सिद्ध करने का प्रयत्न किया। तब से लेकर आज तक इसकी प्रामाणिकता विवाद और दुराग्रह का विषय बनी हुई है। इस संबंध में विद्वानों के चार वर्ग हैं।

प्रथम वर्ग : इसके अंतर्गत डॉ. श्यामसुंदरदास, मोहन लाल विष्णुलाल पंइया, मिश्र बंधु, कर्नल टाड, मोती लाल मेनारिया, डॉ. ग्रियर्सन, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मथुरा प्रसाद दीक्षित आदि विद्वानों की गणना की जाती है।

द्वितीय वर्ग : इस वर्ग के विद्वानों में डॉ. गौरीशंकर हीरचन्द ओझा, कवि श्यामल दास, मुरारिदान, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. वूलर, डॉ. रामकुमार वर्मा, मुंशी देवी प्रसाद, मारिसन आदि इस ग्रंथ को अप्रामाणिक मानते हैं। इन विद्वानों ने रासो की तिथियों, नामों, घटनाओं तथा संवतों आदि के असत्य होने का उल्लेख किया है। आचार्य शुक्ल ने इसे अप्रामाणिक मानते हुए भी आदिकाल में स्थान दिया और हिंदी साहित्य का प्रथम महाकाव्य माना।

तृतीय वर्ग : इस वर्ग के समर्थक विद्वान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, अगरचंद नाहटा, मुनिजिन विजय और दशरथ शर्मा आदि मानते हैं कि पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चन्दबरदाई ने ही 'पृथ्वीराज रासो' लिखा था। किंतु उसका मूल रूप आज उपलब्ध नहीं है। नरोत्तम स्वामी का मत सबसे अलग है। वे कहते हैं कि चंद ने पृथ्वीराज के दरबार में रहकर मुक्तक रूप में रासो की रचना की थी।

8. पृथ्वीराज रासो की अप्रामाणिकता के कारण

'पृथ्वीराज रासो' की अप्रामाणिकता उसके रचना काल, तथाकथित रचनाकार चंदबरदाई की पृथ्वीराज चौहान के साथ समकालीनता पर संशय के कारण हैं। चूँकि इसी रचना को आधार मानकर आदिकाल का गंभीर विश्लेषण विद्वानों ने किया है। इसलिए अधिक बहस इसी ग्रंथ को लेकर हुई है। इसको अप्रामाणिक मानने के आधार हैं : घटना वैषम्य, काल वैषम्य तथा भाषा वैषम्य। इसमें दिए गए अनेक नाम तथा घटनाएं इतिहाससम्मत नहीं हैं।

- रासो में परमार चालुक्य और चौहान क्षत्रिय अग्निवंशी माने गए हैं जबिक प्राचीन ग्रंथों शिलालेखों के आधार पर ये सूर्यवंशी प्रमाणित होते हैं।
- चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता का नाम, माता का वंश, पुत्र का नाम, सामंतों का नाम
 आदि ऐतिहासिक शिलालेखों तथा 'पृथ्वीराज विजय' नामक ग्रंथ से मेल नहीं खाते।

HND : हिंदी P2: मध्यकालीन कविता - 1







- 3. इतिहास के अनुसार अनंगपाल उस समय दिल्ली का राजा नहीं था। न ही पृथ्वीराज को उसने गोद लिया था। पृथ्वीराज अजमेर का शासक था न कि दिल्ली का। बीसलदेव पहले से ही अजमेर राज्य में दिल्ली को शामिल कर चुके थे।
- शहाबुद्दीन की मृत्यु संबंधी इतिवृत्त भी कोरी कल्पना पर आधारित हैं, क्योंकि गोरी की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथों नहीं गक्करों के हाथों हुई।

काल वैषम्य

रासो में दी गई तिथियाँ तथा संवत भी अशुद्ध हैं। कर्नल टाड के अनुसार रासो में दिए गए संवतों तथा दूसरे ऐतिहासिक संवतों में सौ वर्ष का अंतर है।

- 1. रासो में पृथ्वीराज की मृत्यु संवत 1158 है। जबिक इतिहास में वह संवत 1148 है। पृथ्वीराज का जन्म रासो में सं. 1115 है जबिक इतिहास में वह 1220 ठहरता है।
- 2. पृथ्वीराज के जीवन की घटनाएं- उसका दिल्ली जाना, मेवाती मुगल युद्ध, संयोगिता स्वयंवर आदि घटनाओं का सं. 1460 के आस-पास रचित महाकाव्य में कहीं भी उल्लेख नहीं है।

उक्त तथ्यों के संदर्भ में रासो की प्रामाणिकता पर संदेह उत्पन्न हो जाता है। यदि चंदबरदाई पृथ्वीराज का समकालीन होता और रासो उसकी कृति होती तो कदाचित इतनी भयंकर भूलें न होतीं।

भाषा वैषम्य

'रासो' में अरबी फारसी के बहुत से शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो चंद के समय किसी प्रकार प्रयोग में नहीं लाये जा सकते थे। इस प्रकार रासो की भाषा चंद के समय की न होकर सोलहवीं शताब्दी की ठहरती है। प्रसिद्ध भाषाशास्त्री धीरेन्द्र वर्मा ने इस आधार पर इसे 16वीं शती की रचना माना है। रामकुमार वर्मा ने यह भी आपित्त की कि एक ही छंद में शब्दों की विविध रूपावली मिलती है। जैसे शैल के सैल, सयल, सेलह। पुष्कर के पुहकर, पोक्खर। कर्म के कम्य, क्रम्म, क्रम्य। ये बातें रासो के प्राचीन होने में शंका पैदा करती हैं। यह तो रासो के समर्थक भी मानते हैं कि उनमें प्रक्षिप्तांश बहुत है।

रामकुमार वर्मा एवं आचार्य शुक्ल ने यह आरोप भी लगाया कि इसमें 'विनयपत्रिका' की भाँति सब देवताओं की स्तुति है। इस पर 'विनयपत्रिका' का प्रभाव है। 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा एक सी नहीं है। उसमें 16वीं और 17वीं शती की भाषा भी बड़ी मात्रा में मौजूद है।

9. पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक मानने वालों के मत

रासो एकदम जाली पुस्तक नहीं है। इसमें बहुत कुछ प्रक्षेप होने के कारण इसका रूप बिगड़ गया है। यह ग्रंथ साहित्य और भाषा की नजर से महत्वपूर्ण है। रासों के लघुतम संस्करण में प्रक्षिप्त अंश अधिक नहीं हैं। मुनिजिन विजय का मानना है कि रासों का मूलरूप छोटा था। 'पुरातन प्रबंध संग्रह' में रासों के चार छंद ऐसे मिले हैं जो रासों की लघुतम प्रतियों में भी हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि "इन पदों के प्रकाशन के बाद अब इस विषय में किसी को संदेह नहीं रह गया है कि चंद नामक किव पृथ्वीराज के दरबार में थे। अपने मूल रूप में रासों की ऐतिहासिकता अक्षुण्ण है।" ओझा जी के अनुसार रासों की अशुद्ध वंशावली का विस्तार बीकानेर की लघुतम प्रति में नहीं है। 'पृथ्वीराज विजय' में और इस प्रति की वंशावली में कुछ नामों का अंतर है। डॉ. दशरथ शर्मा ने रासो पर आरोपित शंकाओं को निर्मूल साबित किया है। उनका मानना है कि मूल रासों न तो जाली ग्रंथ है और न उसकी रचना सं. 16 सौ के आस-पास हुई। रासों की लघुतम प्रति के आधार पर घटना वैषम्य, काल वैषम्य एवं भाषा

HND : हिंदी P2: मध्यकालीन कविता - 1







वैषम्य संबंधी अव्यवस्थाओं का निराकरण हो जाता है। इस प्रति में इतिहास से संबंधित गलतियों एवं घटनाओं का कहीं भी जिक्र नहीं है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का विचार है कि "रासो की रचना शुक शुकी संवाद के रूप में हुई थी। अत: जिन सर्गों का प्रारंभ शुक-शुकी संवाद से है उन्हीं को प्रामाणिक मानना चाहिए।"

डॉ. नामवर सिंह का मानना है कि शुक दौत्यकार्य, नायिका को अप्सरा का अवतार कहना, महादेव के मंदिर में नायक-नायिका का मिलना, सिंहलद्वीप फल द्वारा संतान की उत्पत्ति, लिंगपरिवर्तन आदि बातें अनैतिहासिकता की द्योतक नहीं बल्कि कथानक रूढ़ि के निर्वाह की सूचक हैं। इधर काल वैषम्य का समाधान करते हुए पं. मोहनलाल विष्णुलाल पांडया ने 'आनंद' संवत की कल्पना की है। आनंद अर्थात् अ=0 और नंद=नौ के अंक जोड़ने से 90 वर्ष का व्यवधान सभी तिथियों में ठीक बैठता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि रासो काव्य रूप दसवीं शताब्दी के साहित्य के काव्यरूप से समानता रखता है। इसकी संवाद प्रवृत्ति और रासो प्रवृत्ति कीर्ति पताका और 'संदेश रासक' से साम्य रखती है। इसमें सभी कथानक रूढ़ियों का सुंदर निर्वाह हुआ है। रासो विशुद्ध रूप से इतिहास ग्रंथ नहीं है प्रत्युत काव्यग्रंथ है। रासो की भाषा संबंधी समस्या का समाधान करते हुए रासो की प्रामाणिकता के समर्थकों का कहना है कि उस समय मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हो गए थे। अत: लाहौर का निवासी होने के कारण चन्द की भाषा में उन शब्दों का प्रयोग अनावश्यक नहीं है।

10. निष्कर्ष

रासो की प्रामाणिकता के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रासो सर्वथा अप्रामाणिक नहीं है। रासो का लघुतम रूप उसके मूल रूप के अधिक निकट है। मूल किव की रचना में अन्य किवयों ने कब और कितना अंश प्रक्षिप्त रूप में अवश्य जोड़ दिया है पर इसका निर्णय कर पाना किठन है। भाषा शैली और विषय सामग्री के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये रासो काव्य समय-समय पर परिवर्तित एवं परिवर्द्धित होते रहे हैं। इन ग्रंथों का काव्य सौष्ठव हिंदी की उपलब्धि है। वीर रस की जैसी ओजपूर्ण अभिव्यक्ति इनमें हुई है, वैसी परवर्ती साहित्य में भी दुर्लभ है। तत्कालीन भाषा के स्वरूप को समझने में भी रासो ग्रंथ उपादेय हैं।

HND : हिंदी P2: मध्यकालीन कविता - 1